प्रवेशांक

शोधामृत

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अर्धवार्षिक मूल्यांकित शोध पत्रिका

Vol.-1; issue-1 (Jan-Jun) 2024
Page No.-32-36
©2024 Shodhamrit (Online)
www.shodhamrit.gyanvividha.com

विकास

शोध-छात्र, गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय), दर्शनशास्त्र विभाग,हरिद्वार, उत्तराखण्ड

Corresponding Author :
विकास

शोध-छात्र, गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय), दर्शनशास्त्र विभाग,हरिद्वार, उत्तराखण्ड

श्रीमद्भगवद्गीता में योगत्रयी की अवधारणा

जीव की प्रकृति को आधार मानकर श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण मनुष्य के कल्याण के लिए तीन योग-मार्ग का वर्णन करते है। वैदिक दर्शनों के अनुसार जीव की त्रिगुणात्मक प्रकृति सत, रज और तम है। श्रीकृष्ण स्वयं कहते है 'यह जो मेरी त्रिगुणात्मक प्रकृति की ऐश्वर्यमयी माया है इसका पार पाना अति कठिन है और जीव इसी में भटकता रहता है, परन्तु जो ज्ञानी यह जान लेता है कि इसके पीछे चलने वाली शक्ति "मैं" अर्थात ईश्वर है और इसे जानकर जो मेरी शरण में आता है वह इस मायावी संसार से तर जाता है।[1] अतः जीव को जो बन्धन हुआ है उसका मूल कारण सत, रज और तम गुण प्रधान है। श्रीमद्भगवद्गीता में इन तीन गुणों से रची गई माया से मुक्ति पाने के लिए कल्याण के तीन मार्ग श्रीकृष्ण ने कहे है। कल्याण के इन्हीं तीन मार्गो को "योगत्रयी" कहा जाता है। गीता में जिस योगत्रयी का वर्णन है वो निम्नलिखित है-

1. कर्म-योग
2. ज्ञान-योग
3. भक्ति-योग।

श्रीमद्भगवद्गीता का कर्म-योग

भारतीय दर्शन परम्परा में कर्म की महत्ता आदिकाल से ही रही है। मीमांसक भी कर्मवाद की विवेचन करते है, परन्तु श्रीमद्भगवद्गीता का कर्म-योग मीमांसकों के कर्मवाद से भिन्न है। मीमांसक याज्ञिक कर्म-काण्ड को महत्व देते है जबकि गीता सांसारिक कर्तव्यों को समझकर निष्काम-बुद्धि से उसके पालन पर बल देती है। जहाँ कर्मवाद में स्वर्ग तथा आसक्ति की भावना प्रबल है वहीं श्रीमद्भगवद्गीता के कर्मयोग में निःस्वार्थ तथा अनासक्ति का भाव है। श्रीकृष्ण के अनुसार-

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥[2]

अर्थात 'जिसके कारण समस्त भूतों की प्रवृति होती है और जिसने सम्पूर्ण जगत का विस्तार किया है उसकी अपने कर्मो से पूजा होती है, न कि पत्तों व फूलों से या वाणी द्वारा कहने मात्र से। उक्त व्यवहार करते हुए मनुष्य सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

श्रीमद्भगवद्गीता अपने कर्तव्यों से विमुख होने का उपदेश नहीं करती और न ही सांसारिक दायित्वों से भागने का उपदेश देती है बल्कि संसार के अपने कर्तव्यों और दायित्वों पर डटकर खड़े रहने का उपदेश देती है। वह मनुष्य को लाभ-हानि, सुख-दुःख आदि से परे केवल कर्म करने का उपदेश देती है।

कर्मयोग का सिद्धांत इसी बात से सिद्ध होता है कि अपने कर्मों के द्वारा संसारी लोगो को कर्म करने की शिक्षा देने के लिए भगवान स्वयं कर्म करते है। यही बात श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कही है- 'हे पार्थ इस जगत में मुझे कुछ भी करने को नहीं है, फिर भी मैं कर्म करता हूँ। क्योकि मनुष्य मेरा ही अनुसरण करते है और यदि मैं निष्क्रिय होकर बैठ जाऊँ तो सभी कर्म करना छोड़ देंगे और संसार में अनर्थ हो जयेगा। इससे उत्पन्न दोष मेरे ही होंगे क्योकि जो बड़े लोग कहते है वही अन्य लोग भी अनुकरण करते है। श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म-योग के मार्ग पर चलने वाले आदर्श मनुष्यों का वर्गीकरण तीन रूपों में करती है-

1. स्थितप्रज्ञ
2. भक्त
3. गुणातीत।

स्थितप्रज्ञ का मान्य लक्षण देते हुए श्रीकृष्ण कहते है-

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्पार्थ मनोगतान्।

आत्मयेवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।[3]

अर्थात- 'जो मनुष्य अपनी समस्त मनोगत कामनाओं या इच्छाओं, वासनाओं को त्याग देता है और अपने ही द्वारा अपने में संतुष्ट रहता है वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता की दृष्टि में स्थितप्रज्ञ मनुष्य ही जगत का उपकार करनेवाला तथा स्वार्थ और परमार्थ का समन्वय कर जीवन की लक्ष्य-सिद्धि करने करने वाला होता है।

भक्त के विषय में श्रीकृष्ण कहते है-

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥[4]

अर्थात - 'जो मनुष्य सदा संतुष्ट है, योग-युक्त है, अपने आपको वश में रखता है, जिसका निश्चय दृढ़ है, जिसने अपने मन और बुद्धि को ईश्वर के अर्पण कर दिया है वह भक्त मुझे अर्थात ईश्वर को प्रिय है।'

साथ-ही-साथ श्रीकृष्ण कहते है कि जो भक्त निरपेक्ष है, पवित्र है, कार्य में कुशल है तथा उदासीन है, जिसे कोई व्यथा विचलित नहीं कर सकती, जिसे फल की आशा से प्रयत्न करना छोड़ दिया है वही निष्काम भाव कार्य कर सकता है।[5] और यही निष्काम

भाव से कर्म करना ही गीता का कर्म-योग है।

श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञान-योग

श्रीमद्भगवद्गीता का ज्ञान-योग को सांख्य-योग से भी जाना जाता है। सांख्य भी ज्ञान-योग की बात करता है, परन्तु गीता का ज्ञान-योग सांख्य के ज्ञान-योग से भिन्न है। सांख्य ज्ञान को मुक्ति का साधन मानता है जबकि श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार ज्ञान आत्मा की एकता का पूर्ण अनुभव है। गीता के ज्ञान-योग की दो दिशाएँ है-पहली आत्मा को सब प्राणियों में देखना और दूसरी एक ही आत्मा में सब भूतों का प्रत्यक्ष करना।

श्रीमद्भगवद्गीता समत्व ज्ञान को उच्च कोटि का ज्ञान बतलाती है इस विषय में श्रीकृष्ण उपदेश करते है-

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।

निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः॥[6]

अर्थात- 'जिसका मन साम्यावस्था में स्थित हो गया है वे इस लोक में मृत्यु को जीत लेते है, क्योंकि ब्रह्म निर्लेप और सम है। अतः साम्य बुद्धिवाले व्यक्ति सदैव ब्रह्म में स्थित होकर ब्रह्मभूत हो जाते है।'

यही ज्ञान है, यही समता की एकता है और यही परमेश्वर का स्वरूप है। इस स्वरूप में स्थित हो जाना का नाम ही "ब्रह्मी स्थिति" है। यही श्रीमद्भगवद्गीता का ज्ञान-योग है।

इसी ज्ञान-योग के विषय में पुनः श्रीकृष्ण भगवान कहते है-

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।

स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः॥[7]

अर्थात - 'जो व्यक्ति प्रिय वस्तु को पाकर प्रहर्षित न हो और अप्रिय को पाकर खिन्न भी न हो, जिसकी बुद्धि स्थिर है और जो मोह में नहीं फँसता वही ब्रह्मवेत्ता को ब्रह्म में स्थित हो जाता है।' श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार मानव अज्ञानवश बन्धन की अवस्था में पड़ जाता है। अज्ञान का अन्त ज्ञान से होता है इसीलिये श्रीमद्भगवद्गीता में मोक्ष पाने के लिये ज्ञान की महत्ता पर प्रकाश डालती है।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार ज्ञान दो प्रकार के हैं- (1) तार्किक ज्ञान , (2)आध्यात्मिक ज्ञान। तार्किक ज्ञान वस्तुओं के बाह्य रूप को देखकर उनके स्वरूप की चर्चा बुद्धि के द्वारा करता है। आध्यात्मिक ज्ञान वस्तुओं के आभास में व्याप्त सत्यता का निरूपण करने का प्रयास करता है। बौद्धिक अथवा तार्किक ज्ञान को 'विज्ञान' कहा जाता है। जबकि आध्यात्मिक ज्ञान को ज्ञान कहा जाता है। तार्किक ज्ञान में ज्ञाता और ज्ञेय का द्वैत विद्यमान रहता है। परन्तु आध्यात्मिक ज्ञान में ज्ञाता और ज्ञेय का द्वैत नष्ट हो जाता है। ज्ञान शास्त्रों के अध्ययन से होने वाला आत्मा का ज्ञान है जो व्यक्ति ज्ञान प्राप्त कर लेता है व सब भूतों में आत्मा को और आत्मा में सब भूतों को देखता है। वह विषयों में ईश्वर को और ईश्वर में सब को देखता है। ज्ञान की प्राप्ति के लिये मानव को अभ्यास करना पड़ता है। गीता में ज्ञान को प्राप्त करने के लिये पद्धति का प्रयोग हुआ है- (1) जो व्यक्ति ज्ञान चाहता है उसे शरीर, मन और इन्द्रियों को शुद्ध रखना पड़ता है। इन्द्रियाँ और मन स्वभावतः चंचल होते हैं जिसके फलस्वरूप वे विषयों के प्रति आसक्त हो जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि मन दूषित होता है, कर्मों के कारण अशुद्ध हो जाता है। यदि मन और इन्द्रियों को शुद्ध नहीं किया जाये तो साधक ईश्वर से मिलने से वंचित हो जाता है। क्योंकि ईश्वर अशुद्ध वस्तुओं को नहीं स्वीकार करता है। (2) मन और इन्द्रियों

को उनके विषयों से हटाकर ईश्वर पर केन्द्रीभूत कर देना भी आवश्यक माना जाता हैं इस क्रिया का फल यह होता है कि मन की चंचलता नष्ट हो जाती है और वह ईश्वर के अनुशीलन में व्यस्त हो जाता है। (3) जब साधक को ज्ञान हो जाता है तब आत्मा और ईश्वर में तादात्म्य का सम्बन्ध हो जाता है। वह समझने लगता है कि आत्मा ईश्वर का अंग है।

इस प्रकार की तादात्म्यता का ज्ञान इस प्रणाली का तीसरा अंग है। गीता में ज्ञान को पुष्ट करने के लिए योगाभ्यास का आदेश दिया जाता है। यद्यपि गीता योग का आदेश देती है फिर भी वह योग के भयानक परिणामों के प्रति जागरूक रहती है। ज्ञान को अपनाने के लिये इन्द्रियों के उन्मूलन का आदेश नहीं दिया गया है। ज्ञान से अमृत की प्राप्ति होती है। कर्मों की अपवित्रता का नाश होता है और व्यक्ति सदा के लिये ईश्वरमय हो जाता है, ज्ञानयोग की महत्ता बताते हुए गीता में कहा गया है, ''जो ज्ञाता है वह हमारे सभी भक्तों में श्रेष्ठ है।'' जो हमें जानता है वह हमारी आराधना भी करता है। ''आसक्ति से रहित ज्ञान में स्थिर हुए चित्त वाले यज्ञ के लिये आचरण करते हुए सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं।'' इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसन्देह कुछ भी नहीं है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भक्ति-योग

भक्तियोग मानव मन के संवेगात्मक पक्ष का पुष्ट करता है। भक्ति 'भज' से बना है। 'भज' का अर्थ है ईश्वर सेवा। इसीलिये भक्ति का अर्थ अपने को ईश्वर के प्रति समर्पण करना कहा जाता है। भक्ति के लिए ईश्वर में व्यक्तित्व का रहना आवश्यक है। निर्गुण और निराकार ईश्वर हमारी पुकार को सुनने में असमर्थ रहता है। श्रीमद्भगवद्गीता में ईश्वर को प्रेम के रूप में चित्रण किया गया है। जो ईश्वर के प्रति प्रेम, आत्म-समर्पण, भक्ति रखता है उसे ईश्वर प्यार करता है। भक्त जो कुछ शुद्ध मन से ईश्वर के प्रति अर्पण करता है, उसे ईश्वर स्वीकार करता है। गीता में भगवान ने स्वयं कहा है- 'जो मनुष्य सदा संतुष्ट है, योग-युक्त है, अपने आपको वश में रखता है, जिसका निश्चय दृढ़ है, जिसने अपने मन और बुद्धि को ईश्वर के अर्पण कर दिया है वह भक्त मुझे अर्थात ईश्वर को प्रिय है।[8] श्रीमद्भगवद्गीता में भक्ति को भगवत्प्राप्ति के साधनों में विशेष महत्व दिया गया है। ईश्वर के विराट रूप का दर्शन केवल भक्ति-मार्ग पर चलने से होता है।

इस विषय में श्रीकृष्ण उपदेश करते है-

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।

ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप।।[9]

अर्थात- 'भक्ति के द्वारा भगवान के विराट स्वरूप को जानने, देखने और प्रवेश करने की शक्ति प्राप्त होती है। अतः भगवान के ज्ञान में, दर्शन में तथा प्रवेश में अनन्या भक्ति ही एकमात्र साधन है।

यही श्रीमद्भगवद्गीता का भक्ति-योग है। श्रीमद्भगवद्गीता में भक्ति की अनन्यता के लिए पाँच लक्षण बतलाये गए है-

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।

निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।[10]

अर्थात - ' जो मनुष्य 1. मेरा कर्म करने वाला है, 2. मुझे ही परम् पुरुष और परम् प्राप्तव्य पदार्थ मानता है, 3. मेरी भक्ति करता है, 4. जो आसक्ति से मुक्त है, 5. जो समस्त भूतों के प्रति वैरभाव से रहित है वह मनुष्य मुझे प्राप्त होता है।

श्रीमद्भगवद्गीता के चार प्रकार के भक्तों को स्वीकारा गया है- भगवान ने स्वयं कहा है। ''चतुर्विद्या भजन्ते माँ जनाः'' अर्थात् चार प्रकार के भक्त जन मुझे भजते हैं। यह चार प्रकार के भक्त इस प्रकार हैं- (1) आर्त्त (2) जिज्ञासु (3) अर्यार्थी (4) ज्ञानी। रोग से पीड़ित व्यक्ति अपने रोग निवारण हेतु ईश्वर भक्ति करता हैं ऐसे भक्त को आर्त्त भक्त कहा जाता है। जो भक्त ज्ञान पाने की इच्छा रखते हैं वह जिज्ञासु कहलाते हैं। अर्यार्थी ऐसे भक्त को कहा गया है जो ईश्वर की वन्दना द्रव्यादि अर्थात् सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति के उद्देश्य से करते हैं। ज्ञानी उस भक्त को कहा गया है जो परमेश्वर का ज्ञान पाकर कृतार्थ हो जाता है। ज्ञानी भक्त निष्काम बुद्धि से भक्ति करते हैं। जबकि अन्य तीन प्रकार के भक्त सकाम भाव से भक्ति करते हैं। गीता में बार-बार ज्ञानी भक्त की महिमा की चर्चा हुई है। वह भक्तों की कोटि में श्रेष्ठतम् है भगवान ने कहा है कि-''ज्ञानी विशिष्यते'' अर्थात् ज्ञानी भक्त अति उत्तम है। ''ज्ञानिनः अहम् अत्यर्थम् प्रियः च सः मम प्रियः'' ज्ञानी को मैं अत्यन्त प्रिय हुँ और वह ज्ञानी मेरे को (अत्यन्त) प्रिय है। ''ज्ञानी त्वात्मैव'' अर्थात् ज्ञानी तो मेरा स्वरूप ही है। ''सः महात्मा सुदुर्लभः'' अर्थात् आत्मा अति दुर्लभ है। गीता में ज्ञान और भक्ति में निकटता का सम्बन्ध दर्शाया गया है। यहाँ ज्ञान में ही भक्ति तथा भक्ति में ही ज्ञान को गूँथ दिया गया है। इसके कारण यहाँ ज्ञान और भक्ति के परस्पर विरोध नहीं दिखता है। परमेश्वर के ज्ञान के साथ ही प्रेम रस की अनुभूति होने लगती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञान, कर्म और भक्ति का अनुपम समन्वय है। ईश्वर को ज्ञान से भी अपनाया जा सकता है, कर्म से भी अपनाया जा सकता है तथा भक्ति से भी अपनाया जा सकता है। जिस व्यक्ति को जो मार्ग सुलभ हो वह उसी मार्ग को चुनकर ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। ईश्वर में सत्, चित् और आनन्द है। जो ईश्वर को ज्ञान से प्राप्त करता है उसके लिये वह प्रकाश है, जो ईश्वर को कर्म के द्वारा पाना चाहते हैं उसके लिये वह शुभ है, जो भावना से अपनाना चाहते हैं उसके लिए वह प्रेम है। इस प्रकार तीनों मार्गों से ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। जिसे विभिन्न रास्तों से एक लक्ष्य पर पहुँचा जा सकता है उसी प्रकार विभिन्न मार्गों से ईश्वर की प्राप्ति सम्भव है।

संदर्भ सूची:-

1. श्रीमद्भगवद्गीता 7/14
2. श्रीमद्भगवद्गीता – 18/46
3. श्रीमद्भगवद्गीता- 2/5
4. श्रीमद्भगवद्गीता- 12/14
5. श्रीमद्भगवद्गीता- 12/16
6. श्रीमद्भगवद्गीता- 5/19
7. श्रीमद्भगवद्गीता- 5/20
8. श्रीमद्भगवद्गीता – 12/14
9. श्रीमद्भगवद्गीता- 11/54
10. श्रीमद्भगवद्गीता- 11/55